ISSN:2583-8849



उमेश कुमार चौरसिया
अजमेर, राजस्थान

श्रीकृष्ण भक्ति काव्य के गौरव नागरीदास और बणीठणी

'अष्ट सखा पहले भये नवें नागरीदास' यह उक्ति वैष्णव संप्रदाय में प्रचलित है। इसका तात्पर्य है कि श्रीकृष्ण की स्तुति सख्यभाव से करने वाले आठ सख्यभक्त पूर्व में विद्यमान थे ही, किन्तु श्रीकृष्ण लीलाओं की अनन्य स्तुति को अपने पदों में कहने वाले भक्तवर नागरीदास नवें श्रीकृष्णसखा कहे गए। वर्तमान में अजमेर के निकट स्थित मार्बलनगरी के रूप में विख्यात किशनगढ़ का प्राचीन नाम था 'कृष्णगढ़', वहीं के आठवें राजा थे सावंतसिंह जिन्हें कृष्णभक्ति के कारण 'नागरीदास' कहा गया। नागरीदास कृष्णभक्ति परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और संभवतः उनके राजवंश की कृष्णभक्ति के कारण ही तब किशनगढ़ का प्रथम नाम 'कृष्णगढ़' रखा गया होगा । भक्तवर नागरीदास ने लगभग 68 आलौकिक ग्रंथों की रचना की और इनमें कृष्ण की लीलाओं, गोपियों के प्रेम कृष्ण के विविध रूपों और भक्ति रस से परिपूर्ण दोहे, कवित्त, चौपाई और छंद विद्यमान हैं। ये आलौकिक इसलिए है कि जैसे-जैसे हम इनका अध्ययन करते जाते हैं श्रीकृष्ण की भक्ति में हम डूबते चले जाते हैं।

कृष्णगढ़ राज्य की वंश परंपरा में सदैव ही वैष्णव, धर्मपरायण और कविता व कला प्रेमी शासकों की श्रृंखला रही है। नागरीदास के प्रपितामह महाराजा रूपसिंहजी गायनविधा में पारंगत श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे, पितामह महाराजा मानसिंहजी स्वयं प्रसिद्ध कवि वृन्द के शिष्य भक्त कवि थे और भावविलास व रसपायनाक ग्रंथों की रचना भी की। पिता महाराजा राजसिंहजी परम धर्मपरायण और नीतिज्ञ थे। महाराजा मानसिंहजी ने उन्हें भी कवि वृन्द से शिक्षा दिलाई थी । कवि सूरत मिश्र से भी इनका संपर्क रहा। राजसिंहजी ने विविध प्रसंग में विष्णुपदों को लेते हुए 33 ग्रंथों की रचना की थी। मुगलकालीन समय होने पर भी इनकी श्रीकृष्ण भक्ति सतत् गुंजायमान होती रही। नागरीदास की माता ब्रज में कामी (कामवन) की निवासी होने के कारण उनपर बचपन से ही श्रीकृष्ण की लीलाभूमि का भक्ति प्रभाव रहा ।

भक्त नागरीदास श्रीमद्भागवत् से बहुत प्रभावित थे । भागवत् में एक प्रसंग आता है कि जब नारद घूमते हुए एक जंगल में पहुँचे और तालाब में स्नान करके भगवत् स्मरण करने बैठ गए। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको हृदय में दर्शन दिये। किन्तु वह दर्शन अल्पकालिक ही मिल सका। नारद कुछ समझते कि आकाशवाणी हुई कि तुम्हारी भक्ति के कारण ये भगवत् दर्शन हुए हैं, परन्तु सतत् दर्शन तुम्हें इस जन्म में नहीं हो सकता। उसके लिए साधु-सज्जनों की सेवा करनी होगी तभी तुम भगवत्प्राप्ति कर सकोगे। यह वाक्य धर्माचार्यों, भक्तों सभी को साधु सेवा और सत्संग की प्रेरणा देने वाले हैं। नागरीदास भी इसी से प्रभावित हुए। उन्होंने भी सत्संग के माध्यम से अपने अहम् को समाप्त कर श्रीकृष्ण की परमभक्ति को प्राप्त किया। राजा सांवंतसिंह का मन कभी राज्य शासन में लगा ही नहीं, श्रीकृष्ण की भक्ति ने उन्हें तो केवल भक्त नागरीदास ही बना दिया था ।

नागरीदास का कविता काल विक्रम संवत 1176 से 1819 के मध्य माना जाता है। प्रथम ग्रंथ 'मनोरथ मंजरी' वि. सं. 1780 का है और वि. सं. 1819 में आये 'वन जन प्रसंस को उनका अंतिम ग्रंथ समझा गया है। निश्चित रूप से कृष्णभक्ति काव्य की यह अनमोल विपुल संपदा है। ये सभी ग्रंथ मूल स्वरूप में नागरीदास की सुन्दर हस्तलिपि में ही हैं। बाद में कुछ की मुद्रित प्रतियां भी उपलब्ध होती हैं। नागरीदास के भक्तिकाव्य में श्रीमद्भागवत के विशिष्ट प्रभाव के साथ ही गीता, पद्मपुराण, गरूड़ पुराण, आदि पुराण, नृसिंह पुराण, स्कंध पुराण, बाल्मीकि रामायण आदि का प्रभाव भी झलकता है। इन धार्मिक ग्रंथों का उल्लेख भी उनके कवित्त में कई बार आया है। 'देहदशा' और अथ 'वैराग्य वटी' ग्रंथ में चौपाई, 'अरिल्ल पच्चीसी में अरिल्ल छंद और 'छूटक पद' में छूटक पदों का अद्भुत प्रयोग देखने को मिलता है। भोर लीला, फूल विलास, पद प्रसंग माला, पावस पच्चीसी, रास रसलता, सीत सार, लग्नाष्टक प्रातरस मंजरी जैसे 18 ग्रंथों में मनभावन दोहों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। सदा की भांझ, श्री ठाकुर के जनम् उत्सव के कवित्त, दीवाली के कवित्त, होरी के कवित्त, चांदनी के कवित्त, फाग गोकुलाष्टक जैसे 16 ग्रंथों में कवित्त और सवैयों का कुशल प्रभावी प्रयोग हुआ है। इनके बाद के ग्रंथों में नागरीदास ने ब्रजलीलाओं का सुंन्दर चित्रण पद, दोहा, छंद और कवित्त में किया है। नागरीदास ने डिंगल, पिंगल, पंजाबी, राजस्थानी, खड़ीबोली और ब्रज आदि भाषाओं व उपभाषाओं में काव्यरचना की ।

जीवन के परिवर्तित होते परिवेश का प्रभाव भी नागरीदास के काव्य पर दिखाई देता है। माता के निधन उपरान्त दार्शनिक भाव, विवाह के बाद प्रेम - स्नेह भाव, मुगलों की अधीनता में राजकाज के प्रति अरूचि और घृणा का भाव, वृंदावन दर्शन की अधीरता और साधु - सत्संग का भक्तिभाव और अन्ततः राज्य और गृहस्थ त्यागकर पूर्णतः श्रीकृष्ण भक्ति में समर्पण का भाव । नागरीदास रीतिकालीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होने के साथ उनसे ऊपर उठने की क्षमता भी रखते थे, छूटक कवित्त इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। इनके काव्य को रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य का सम्मिलन कहा जा सकता है। नागरीदास भी इसी सर्वहारा श्रीकृष्ण की सच्ची भक्ति का मार्ग बताते हुए कहते हैं- 'जो बांचे सीखै सुने, रीझि रीझि करे प्रश्न । सो सत संगति कीजियो पहुंचे जय श्री कृष्ण ।।'

नागरीदास के काव्य विकास में संगीत का भी महत्वपूर्ण स्थान है । जितना भावपूर्ण वे रचते उतना ही मधुर स्वर में गाते भी थे। संगीतविज्ञ नागरीदास ने अपने ग्रंथों में पदो के लिए षट, टोड़ी, भीमपलासी, नायकी, झंझोटी, देवगन्धार, मल्हार, कल्याण जैसी 40 से अधिक रागों को व्यवहृत किया। उनके भक्तिकाव्य की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण संगीत ही रहा। नागरीदास कवि, संगीतज्ञ के साथ-साथ चित्रकार भी थे। उनके काव्य में भी चित्रात्मकता झलकती है। नागरीदास ने स्वयं भी कई चित्र बनाए और अनेक चित्रकारों ने भी उनके पदों पर आधारित भावपूर्ण चित्र उकेरे । उन्होंने अपने समय में चित्रकला को भरपूर प्रोत्साहन भी दिया, इसीलिए तात्कालीन चित्रों से प्रभावित 'कृष्णगढ़ स्कूल ऑफ पेन्टिंग' की पहचान बनी।

आज किशनगढ़ चित्रकला की पहचान बन गई 'बणीठणी' में चित्रित स्त्री वास्तव में नागरीदास की पासवान अर्थात उपपत्नी थी। बणीठणी उनकी सर्वप्रिय सखा थी। वि.सं. 1788 में राज्यपरिवार की सेवा में नियुक्त अद्भुत सौंदर्य की धनी बणीठणी के श्रीकृष्ण भक्ति में लीन कविताप्रेम ने ही नागरीदास को आकर्षित किया था। उसे पासवान बनाने का मन्तव्य भी भोगविलास न होकर श्रीकृष्ण भक्ति ही रहा था। बणीठणी ने भी 61 से अधिक भक्तिग्रंथों की रचना की थी। आज भी किशनगढ़, नाथद्वारा के कृष्ण मंदिरों में वंदना स्वरूप नागरीदास के पद ही गाये जाते हैं। नागरीदास श्रीकृष्ण की भक्ति में पद गाया करते थे और साथ देती बणीठणी । कहते हैं नागरीदास ने स्वयं ही उसे राजसी वस्त्र और आभूषण पहनाकर एकांत में उसका चित्र बनाया, बाद में चित्रकार निहालचन्द ने उसमें कुछ संशोधन करके वर्तमान प्रसिद्ध 'बणीठणी' चित्र को अंतिम रूप दिया।